# गुरुकुल-पत्रिका

[ गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका ]


## भगवद्गीता का सन्देश


श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति


कुरुक्षेत्र के मैदान में, कौरवों और पाण्डवों की सेनायें, विजय प्राप्त करने की अभिलाषा से एक दूसरे के सामने खड़ी थी। कौरवों की सेना में अधिक सैनिक थे, और पाण्डवों की सेना में कम, परन्तु पाण्डवों का नेतृत्व योगिराज कृष्ण और गाण्डीवधारी अर्जुन के हाथ में था, और कौरवों के सेनापति वृद्ध पितामह भीष्म थे, इस कारण दोनों ओर की शक्ति सन्तुलित सा हो गई थी।

युद्ध आरम्भ होने का समय आया, तो अर्जुन ने अपने सारथि मित्र कृष्ण से कहा कि हे अच्युत मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच में ले चलो जिस से मैं अपने शत्रुओं पर दृष्टि डाल सकूं। कृष्ण ने वैसा ही किया। कुशल सारथि का संकेत पाकर पाण्डव के विशाल श्वेत घोड़े कपि चिह्न वाले महान् रथ को लेकर रणक्षेत्र के मध्य में जा पहुँचे। वहां जाकर अर्जुन ने अपने शत्रुओं पर दृष्टि डाली तो उस का दिल काँप गया, डर से नहीं अपितु धर्म-भीरुता से। ने कौरवों की सेना में पितामह, आचार्य, मातुल भाइयों को शत्रु बन कर खड़ा पाया। इस दृश्य र्जुन के हृदय को हिला दिया और वह न योत्स्य गोविन्द मुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह' 'हे गोविन्द मैं नीं करूंगा' यह कह कर चुप हो गया। इस राज कृष्ण ने उसे कायर कह कर फटकारा तो संशयात्मा अर्जुन ने हथियार रथ में रख कर कृष्ण के सम्मुख आत्म-समर्पण करते हुए कहा—

> कार्पण्य दोषोपहतस्वभाव,
> पृच्छामि त्वा धर्म-सम्मूढचेतः
> यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे,
> शिष्यस्तेऽहं शाधिमान्त्वां प्रपन्नम्।

इस सन्देह ने मेरी स्वभावसिद्ध वीरता को निर्बल कर दिया है। मैं धर्म संकट में पड़ गया हूँ। हे जनार्दन, मैं शिष्यभाव से तुम्हारी सेवा में उपस्थित हो कर पूछता हूँ, मुझे कल्याण का मार्ग बताओ।

जनार्दन ने अपने प्रिय सखा और शिष्य को ठीक मार्ग पर लाने के लिये उपदेश दिया। जनार्दन ने घबराये हुए सखा और शिष्य अर्जुन को दिलासा देते हुए कहा—

> 'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः
> तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।

क्या करना चाहिये और क्या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर देने में बड़े-बड़े विद्वान् चकरा जाते हैं। हे अर्जुन, मैं तेरे सामने कर्म की ऐसी विशद व्याख्या करूंगा, जिस से तू सन्देह के भंवर से पार निकल जायगा।

भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को संशय के गड्ढे में से

निकाल कर कर्तव्य के मार्ग पर लाने के लिए कर्म की जो विशद व्याख्या की है, उस के तीन सूत्र हैं। पहला सूत्र यह है—

कर्मैव कुरुतस्मात् त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः
शरीर-यात्रापि च ते न प्रसिध्येदकर्मणः।

हे अर्जुन! तू संशय में पड़ कर सोचता है कि मैं क्षत्रिय के कर्म, धर्मयुद्ध को छोड़ कर और अकर्मा हो कर चुपचाप बैठ जाऊं, इस से पाप से बच जाऊंगा, यह तेरा भ्रम है।

मनुष्य कर्महीन हो ही नहीं सकता। यदि जीता है तो उसे मन, वाणी और शरीर से कर्म करना ही पड़ेगा। यदि वह सोच समझ कर भले कर्म न करेगा तो प्रकृति उस से बुरे कर्म करायेगी। मनुष्य का कल्याण इसी में है कि वह सदा अपने योग्य कर्म करने में तत्पर रहे। कर्म रहित मनुष्य मृत मनुष्य से भी बदतर है।

मान लिया कि मनुष्य को कर्तव्य कर्म करना चाहिये अर्थात् क्षत्रिय को युद्ध करना चाहिये। उस पर अर्जुन के मन पर दूसरी आशङ्का उत्पन्न हुई। उस ने कहा—

न चैतद् विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।

हम नहीं जानते कि जीत किसकी होगी। हम जीतेंगे, या हमारे शत्रु विजयी होंगे। दूसरे रूप में उस की आशंका यह है कि जब कार्य की सफलता अनिश्चित है तो उस में हाथ ही क्यों डाला जाय। इस आशंका का समाधान करते हुए योगिराज ने बतलाया है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन,
मा कर्मफल हेतुर्भूः मा तेऽसंगोस्त्वकर्मणि।

तुम अपना कर्तव्य कर्म करने के ही अधिकारी हो, फल की प्राप्ति के नहीं, वह तुम्हारे बस की बात नहीं। क्योंकि कर्म-फल देना विधाता के हाथ में है। उसका चिन्तन न करते हुए अपना कर्तव्य कर्म करते जाओ, यही तुम्हारा धर्म है। हां इतना विश्वास रखो कि—

नहि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।

जो अपने कर्तव्य का पालन करता है, अन्त में उसकी दुर्गति नहीं होती।

जो दशा युद्ध के आरम्भ में अर्जुन की हुई थी, वह अपने जीवन में कभी न कभी प्रत्येक मनुष्य की होती है। उस के सामने दो रास्ते आ जाते हैं, वह निश्चय नहीं कर सकता कि किधर जाय और सोचने लगता है कि—'किं कर्म, किं च अकर्म' क्या करूं और क्या न करूं। उस समय उसे अपने मन को जो उत्तर देना चाहिये, वही योगिराज कृष्ण ने अर्जुन को दिया है, उन्होंने अर्जुन से कहा है —

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय
सिध्य सिध्योः समो भूत्वा समत्व योग उच्यते।

हे अर्जुन तू योग में स्थित हो कर कर्म कर। कर्म करता हुआ फल की चिन्ता मत कर। सिद्धि या असिद्धि का ध्यान छोड़ कर और कर्तव्य समझ कर कर्म करने का नाम ही योग है। कहीं जिज्ञासु यह समझ जाय कि सिद्धि की इच्छा छोड़ कर भूडेपन से कर्म करने का नाम योग है, इस कारण भगवन् ने दूसरे स्थान पर कहा है—

'योगः कर्मसु कौशलम्'

कर्म को बुद्धि पूर्वक कुशलता से करना योग कहलाता है, मूर्खता से हाथ पांव मारने का नाम योग नहीं है। अर्जुन ने युद्ध करने के पक्ष में जो युक्तियां दी थीं, उनका आमूलचूल समाधान करते हुए योगिराज कृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में जो प्रकट किया है, वह इस संसार की रणस्थली पर प्रवर्तमान प्रत्येक मनुष्य के लिए लागू होता है। जब म

मैं स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक् स्मृति, मेधा, धृति, क्षमा हूँ, यह बतलाकर स्त्रियों को ऐसे उच्च आसन पर बैठा दिया है कि जहा कोई आज तक बैठा ही नहीं। जो स्त्री है वही तो श्री है। जहा तक मेरा संस्कृत साहित्य तथा कोषों का अध्ययन है, मैं कह सकता हूँ कि जितने अच्छे से अच्छे भाव वाले शब्द हैं, उनमें स्त्रीवाचक शब्द ही अधिक हैं। पुरुषों के गुणों में कठोरता का आवास रहता है, स्त्रियों के गुणों में सरलता, कोमलता, सुन्दरता का प्रवेश रहता है। जो स्त्रियें अधिकार का प्रश्न उठा कर पुरुषों जैसा बनना चाहती हैं, वे अपनी नैसर्गिक सभ्यता को खो बैठेंगी। आर्यों ने अनन्तकाल से—न जाने कब से—कदाचित् सृष्टि जब से बनी तब से ही, स्त्रियों के प्रति सम्मान का भाव रखा है। इनकी प्रगति में कभी भी किसी प्रकार की बाधा नहीं डाली। बीच के अर्वाचीन अन्धकार युग की बात को छोड़ दीजिए, ऐसे तो उलट फेर संसार के सभी राष्ट्रों में होते चले आए हैं—

काँ श्चात्थाप।न् नूनं, काँश्चिदन्याँश्चपातयन्।
वेधा विदधत्येव कन्दूक क्रीडितभ्रमम् ॥
( राजतरङ्गिणी )

विधाता प्राणियों के साथ गेंद का सा खेल खेलता रहता है। जैसे गेंद पटकने पर ऊपर जाती है, कभी नीचे आती है, फिर उठती है, इसी प्रकार प्राणियों की जीवन घटना है। वे कभी उभरते हैं, कभी गिरते हैं, कभी फिर उठते हैं। महात्मा विदुर कहते हैं—

पुनर्नरो याचति, याच्यते च।
पुनर्नरो जायते म्रियते च ॥
लाभालाभौ मरणं जीवितञ्च।
पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति।
तस्माद्धीरो न हृष्येन्न शोचेत् ॥

मनुष्य कभी किसी के सन्मुख हाथ फैलाता है, और कभी ऐसा समय आता है कि दूसरे उसके सामने हाथ फैलाते हैं। आज मरता है तो कल फिर जन्म लेता है, आज लाभ है तो कल घाटे का सौदा रहता है। बारी-बारी से सब का सब कुछ देखना पड़ता है। इस लिए धीर पुरुष न बहुत हर्ष करते हैं, न किसी वस्तु का शोक करते हैं।

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा, चक्रनेमिक्रमेण ॥
( कालिदास )

जल के रहट की तरह सब का ऊपर-नीचे दशा होती रहती है। भारतवर्ष ही इस नियम का अपवाद क्यों बना रहता। इसने भी पराधीनता, हीनता के दृश्य देखे और अब इसका ग्रहण छूटकर पुनः स्वतन्त्र हो गया है। इस स्वतन्त्रता की प्राप्ति में देवियों का भी बड़ा हाथ रहा है। योगवासिष्ठ कहता है कि जैसे एक पक्ष से पक्षी उड़ नहीं सकता, गाड़ी एक पहिये से चल नहीं सकती, इसी प्रकार यह संसार-शकट स्त्री पुरुष के परस्पर सहयोग के बिना चल नहीं सकता।

आप यथाविधि इस छोटे से विश्वविद्यालय में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करके बाहर संसार रूपी बड़े विश्वविद्यालय में जा रही हो। अब तक आप के परीक्षकों की संख्या दस पाच हो रहती रही है, पर अब समस्त संसार ही आपका परीक्षक हो जायगा। बाहर जाकर देखोगी तो एक नया संसार बन गया है। यह विश्वामित्र का नया संसार है, जिसमें सशरीर ही सीधे स्वर्ग जाने का प्रयत्न किया जा रहा है। एक ओर देखोगी कि विज्ञान-शून्य धर्म सांस ले रहा है तो दूसरी ओर धर्म शून्य विज्ञान सृष्टि का संहार करने की चिन्ता में है। समस्त विज्ञानवादी इस चिन्ता में, इसी प्रयत्न में हैं कि स्वल्प से स्वल्प समय में अधिक से अधिक प्राणियों का संहार कैसे किया जाय। कोरे भौतिकवाद का नग्न नृत्य हो रहा है और पाच सहस्र वर्ष पश्चात् भी भगवान् कृष्ण के वचनों का ध्यान आ रहा है कि यत्र तत्र सर्वत्र आसुरी संपद का साम्राज्य है। नवीन

शिक्षा में लालित-पालित-पोषित-परिवर्द्धित भारतीय उसी की ओर दौड़ रहे हैं, अपनी दैवी संपद् को भुला बैठे हैं। ईश्वर की कृपा हुई हमारे पुण्य शेष थे, दयानन्द आये, तिलक आये और आये गांधी, जिनकी त्याग तपस्या से भारतवर्ष आसुरी संपद् द्वारा ग्रस्त होने से बाल बाल बच गया।

सावधान! बाहर जाकर इस आसुरी सम्पद् के जाल में मत फँसना, इसके सम्पर्क से बचे रहना। भारतीय दैवी सपद् का सदैव ध्यान रखना। सात स्वों की रक्षा करने में सन्नद्ध रहना। (१) स्वधर्म, (२) स्वराष्ट्र, (३) स्वराज्य, (४) स्ववेष, स्वभूषा, (५) स्वाभिमान, (६) स्वशिक्षा-स्वदीक्षा और (७) स्वसंस्कृति। अपने गुरुजनों के प्रति भक्तिभाव बनाए रखना। अपने मातृकुल के प्रति कृतज्ञ रहना। बाहर जाकर ऐसा रहना, ऐसे बर्तना जिससे आपके कारण किसी को किसी प्रकार का क्लेश न हो। आपके किसी कृत्य से स्वयं आपका तथा आपकी मातृसंस्था का किसी प्रकार से किसी प्रकार का भी उपहास न हो। संसार में जाकर किस प्रकार बर्तना, यह भगवान् कृष्ण तथा भगवान् व्यास ने बतलाया है—

अनभिद्रोहेण भूतानां, अल्पद्रोहेण वा पुनः।

अर्थात् प्रत्येक व्यवहार में ऐसे दक्ष रहो कि आप के कारण पहले तो किसी को किसी प्रकार का क्लेश न हो यदि असम्भव हो तो ऐसे ढंग से बर्तो कि आपके व्यवहार के कारण अन्यों को न्यूनतम से न्यूनतम क्लेश पहुँचे।

स्मरण रहे यह पुण्यभूमि भारतभूमि धर्मभूमि है। इस में धर्म तत्वों को भुला कर काम नहीं चल सकता। भारतवर्ष के अभ्युदय तथा निःश्रेयस के तत्व का सदैव मनन करती रहो। प्राचीन समय में देवियों में कई बड़ी २ ब्रह्मवादिनिएं हुई, जो स्पष्ट रूप में कहती थीं कि—

साहं तस्मिन् कुले जाता, भर्तर्यसति मद्विधे।
विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्येका मुनिव्रतम्॥

मैं मोक्ष धर्म का अभ्यास कर रही हूँ इत्यादि। हमारे धर्म के चार मुख्य भाग हैं, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष धर्मानुसार ही अर्थ की प्राप्ति, धर्मानुसार ही विविध इच्छाओं की पूर्ति, धर्म करते २ ही मोक्षप्राप्ति यह निदर्शन है। इस लिये महाभारत के पुण्य पवित्र शब्दों में मेरा यही आशीर्वाद है कि—

धर्मे वो धीयतां बुद्धिः मनो वो महदस्तु च

आपकी बुद्धि सदा धर्म में रहे और आपका मन उदार रहे, क्योंकि

धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानाम्,
स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः।

धर्म इहलोक में साथ देने वाला है ही, किन्तु परलोक में भी बन्धु है।

आपकी आचार्यों ने आपको आर्योचित कर्तव्य मार्ग का निर्देश किया ही है। उन आदेशों का, निर्देशों का, अनुशासनों का पालन करना भी आप का धर्म है।

हमारे इन आर्यों की संस्थाओं में से प्रति वर्ष कई स्नातकों तथा स्नातिकाओं में ऐसे-ऐसे स्नातक तथा स्नातिकायें निकलती रहनी चाहियें, जो महर्षि के उद्देश्य की पूर्ति के लिए दृढ़ संकल्प होकर जीवन ही इस कार्य के लिए अर्पण कर देवें, तभी हम और हमारा समाज संसार में कुछ कर सकेगा।

मैं यह देख रहा हूँ और अनुभव कर रहा हूँ कि अन्य धर्मों के संस्थापकों को जिस प्रकार का शिष्य-समुदाय मिला, उस प्रकार का भक्त तथा शक्त शिष्य-समुदाय स्वामी दयानन्द को नहीं मिला। इस त्रुटि की पूर्ति हो जाय तो फिर आर्य-समाज किसी प्रकार भी घाटे में नहीं रह सकता। गुरुकुल के स्नातक-स्नातिकाओं का परम अथवा प्रथम कर्तव्य है कि स्वामी

दयानन्द की जगाई हुई ज्योति की सर्वात्मना रक्षा करते रहें। हमारे गुरुकुल एक प्रकार से दयानन्द के ही दीपक हैं। लोग इन दीपकों से अपने २ दीपक जला कर अपना काम चला रहे है, और घर में अपना दीपक रहते भी हम अन्धकार में मार २ फिर रहे हैं। यह सब अपनी ही अनास्था, अश्रद्धा का फल है।

ब्रह्मचारी में बड़ी शक्ति होती है, वह क्या कुछ नहीं कर सकता ? स्वामी दयानन्द ही इसका निदर्शन है। वेद भगवान् कहते हैं—

तानि कल्पत् ब्रह्मचारी सालिलस्य-
पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे ।
स स्नातो, बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यामधिरोचते ॥

ब्रह्मचारी की जल, स्थल, नभ में अव्याहत गति रहती है। वह अद्भुत कार्य कर सकता है जिसको देख कर ससार चकित रह जाता है। ससार ब्रह्मचारी से प्यार करता है। इस समय ससार बहुत दुःखी है। एक प्रकार से 'जल बिच मीन प्यासी' का दृष्टान्त बन रहा है। ससार की आध्यात्मिकता ही नष्ट हो रही है फिर सुख कहा से मिले। हम—

अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः

अन्धों के पीछे अन्धों की तरह चल रहे हैं। पुरुष समाज इस प्रकार अन्धानुकरण कर रहा है और अब देखा देखी महिला समाज भी उधर ही जा रहा है। यह भारत का दुर्दैव है। मैं तो मानता हू कि भारतवर्ष की सहस्रों वर्ष की पराधीनता में भारतीय धर्म-कर्म की किसी ने रक्षा की तो वह देवियों ने ही की। किन्तु आजकल उनकी अटल श्रद्धा का बांध टूट गया और उनकी विपरीत प्रवृत्ति के कारण अब सन्देह होने लगा है कि कहीं भारतवर्ष को अधिक दुर्दिन तो नहीं देखने पड़ेंगे। उर्दू के कवि सम्राट् अकबर ने क्या ही अच्छा कहा है—

बाते तो बन रही है, पर घर बिगड़ रहे है।

स्वार्थ की आधार-शिला पर खड़ी हुई भौतिकवाद की भीत्ति के कारण हम पार की बात जान नहीं सकते हैं, मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनाने की किसी को चिन्ता नहीं है। ऐसे बार समय में प्राचीन शिक्षा दीक्षा में पालित पोषितों का जो कर्तव्य होना चाहिये, वही कीजिए सक्षेप से मैं इतना ही कहना चाहता हूं। शमोऽम्।

[ कन्या गुरुकुल देहरादून के २७ वे वार्षिकोत्सव पर ११-४-५२ को दिये गये दीक्षान्त भाषण का साराश। ]

★

# लंका की एक स्मृति

श्री चन्द्रमणि विद्यालंकार

पुराने कागजों को देखने पर मेरी डायरी के पन्ने में लंका की एक विशिष्ट स्मृति की ओर ध्यान गया। उस समय लंका भारत के साथ था, परन्तु अब एक विदेश बन गया है। दोनों देशों की सस्कृति अब भी एक है। हो सकता है कभी गुरुकुल का, वहा की शिक्षा सस्थाओं व वहा के निवासियों के साथ, वास्ता पड़ जावे, अतः उस सम्बन्ध को जोड़ने के लिये लका की पुरानी स्मृति का यहा उल्लेख किया जाता है।

सन् १६१४ को स्नातक होते ही मैं गुरुकुल मुलतान के मुख्याधिष्ठाता पद पर नियुक्त हो कर वहा चला गया और कुछ मास रह कर उसकी स्थिति को सम्भाला। मै क्योंकि एक इतिहास का विद्यार्थी था, और उसी विषय पर एक निबन्ध लिख कर प्रतिष्ठित स्नातक भी बना था, पुनः भारतीय बौद्धकालीन इतिहास के अन्वेषण के लिए पाली--अध्ययन की उत्कट इच्छा थी, उन दिनो भारत में पाली-अध्ययन का कहीं प्रबन्ध नहीं था, इसलिये जनवरी १६१५ के प्रारम्भ मे गुरुकुल की ओर से कोलम्बो पाली पढ़ने के लिये भेजा गया। वहाँ कोटहेन स्ट्रीट के परमानन्द विहार में पढ़ने का प्रबन्ध हुआ।

शायद पूर्वजन्म का कोई सम्बन्ध था कि प्रथम मिलन पर ही वहा के वयोवृद्ध आचार्य का मेरे प्रति असीम प्रेम उमड़ पड़ा और मैं निहाल हो गया। उनकी उम्र ८० के करीब थी, और कुछ अस्वस्थ भी रहते थे। शुभ नाम पूज्यपाद महास्थविर श्री 'धम्मक्खन्ध' था। लका द्वीप के चार उत्तम कोटि के मुख्यतम बौद्ध गुरुओं में से एक ही थे। इन चारों की सम्मति पर ही लंका का बौद्ध जगत् चलता था। पाली भाषा और बौद्ध साहित्य के तो ये माने हुये अद्वितीय प्रकाड पण्डित थे ही। अस्वस्थता के कारण ये पढ़ाने मे असमर्थ थे, परन्तु फिर भी उन्होंने मुझे अपना ही शिष्य बना कर अत्यन्त सम्मानास्पद गौरव प्रदान किया, जिस से मेरी कठिनाइयां अपने आप दूर हो गई और सर्वत्र मेरा सम्मान बढ़ा।

विधि पूर्वक पाली-अध्यापन का कार्य प्रारम्भ करके फिर उन्होंने अपने उत्तराधिकारी योग्यतम शिष्य महास्थविर श्री पूज्य कल्याणतिस्स के सुपुर्द किया और उन्हें कहा कि वे मुझे अन्य सब काम छोड़ कर भी नियमपूर्वक उन के स्थान पर पढ़ावें। तदनुसार उन्होंने मुझे नित्यप्रति चार घण्टे पढ़ाने का कार्य-क्रम चलाया।

४ फरवरी १६१५ की रात को अचानक परमानन्द विहार के आचार्य पूज्यपाद श्री धम्मक्खन्ध स्वर्गलोक सिधार गये। मैं वहां से डेढ़ मील की दूरी पर लका की रउय कौंसिल के प्रतिष्ठित मेम्बर श्री रामनाथन के अतिथि भवन में रहा करता था। अन्त समय में उन्होंने मुझे बहुत स्मरण किया, परन्तु मैं सौभाग्य लाभ न कर सका। उन्होंने अन्तिम सन्देश देते हुए महास्थविरों से कहा कि उन के अन्त्येष्टि कर्म में मुझे वही अधिकार प्राप्त हो जो कि महास्थविरों को प्राप्त है। जो भिक्खु नहीं है, उसे इस अधिकार का मिलना बिलकुल एक अनोखी बात थी, इसीलिए क्या बौद्ध गृहस्थ और क्या भिक्खु सब का ध्यान मेरी ओर खिंचा कि यह कौन पञ्जाबी पण्डित है जिसे कि यह अभूतपूर्व अधिकार मिला है। मुझे कहा गया कि इन स्वर्गगामी बौद्ध गुरु के सम्बन्ध में श्मशान भूमि में कुछ कहना पड़ेगा। यह महाप्रस्थान यात्रा मील से ऊपर लम्बी थी। मृत्यु के तीसरे दिन यह यात्रा हुई थी, लका भर के प्रमुख भिक्षु और गृहस्थ

पहुँच गये थे। सारा मार्ग बेहद सजाया हुआ था और सुगन्धि से भरपूर था। उपस्थिति दो लाख से कम न थी, अधिक ही होगी।

श्मशान भूमि में अपना हृदयगत भाव अभिव्यक्त करने के लिये संस्कृत में कुछ श्लोक बना लिए थे, जो कि हजारों की संख्या में सिंहल लिपि में छपवा कर उस समय बांटे गए, और लंका के अनेक समाचार-पत्रों में मोटे मोटे शीर्षकों के साथ उसे स्थान दिया गया। इन पत्रकारों ने ही लंका में मुझे 'पञ्जाबी पण्डित' कह कर प्रसिद्ध किया। वे श्लोक एक स्मृति विषय हैं, जो कि इस प्रकार हैं—

यो धर्मसंघपरिषत्सदनस्य चारो
स्तम्भः प्रकृष्टतरतां गत आप्रायाय ।
आसीदिवैक इह सौगतधर्मधुर्यो
विद्याप्रसारणरतो यतता वरिष्ठ ॥ १ ॥

हा हाऽधुना नु गतः खलु धर्मवाङ्,
आचार्यवर्यपदवीमधिरोहमाण ।
सर्वान्विहाय शतसंघजनान् स्वशिष्यान्
सेवारतानमलधर्मपिपासुकांश्च ॥ २ ॥

घोरातिघोरतरदुःखमय हि विश्व
तुच्छातितुच्छतरसारमिदं निरीक्ष्य ।
आनन्दसागरमय परमात्मलोक
यातो नु किं विमलजीवनयापनाय ॥ ३ ॥

आनन्दपक्षिमगते परमे विहारे
मुख्येषु मुख्यतमतां गत आर्यवर्य ।
धर्मामृतानि वचनानि पिबन्म एव
प्राणान् विहाय महता सदनं प्रयात ॥ ४ ॥

लंकापुरीमुदधिवेष्टित चारुशोभां
प्रायेण बौद्धमतवादिनिवासभूमिं ।
तेजोमयो ऽमलयशाश्च सुभासमान
अस्तंगत किमिह सौगतधर्मसूर्य ॥ ५ ॥

हे भिक्षुनाथवर ! सौगतधर्ममूर्ते !
मान्यातिमान्यवर ! साधुविहारशील !
क्व तान् गत पुरनिवासिजनान्विहाय
सेवापरानिह तु विह्वलमानसांश्च ॥ ६ ॥

कारुण्यहीन विकरालकरालकाल !
कार्पण्यपापपरिपूरितकाय जाल्म !
यत्यत्पय विमलसौगतधर्मभानु
तेषां त्वया हि हरता वद किं हृतं न ॥ ७ ॥

दयास्वामिन्स्वामिन् प्रभुवर कृपालो भवपते
नरेन्द्राणां राजन् विमलपरमात्मन् नरपते
अशोका मानस्का खलु भवतु लंकाजनगणाः
सुचित्तः शान्तात्मा यतिय तवरो यातु सुगतिं ॥ ८ ॥

★

[ पृष्ठ सोलह का शेष ]

६ राजा, राष्ट्र व व्यक्ति के बुद्धिपूर्वक किये हुए कार्य की ही रक्षा करे। राग, द्वेष व स्वार्थ आदि किसी भावना के वश प्रेरित हो कर किये कार्यों की रक्षा न करे।

७ ब्रह्मणस्पति—अर्थ मन्त्री, अन्न मन्त्री, सेना मन्त्री, शिक्षा मन्त्री तथा श्रम मन्त्री के लिए एक ही शब्द का प्रयोग हुआ है।

अर्थ—ब्रह्म=अन्न, धन, बल बुद्ध स्तुति। सुवृक्तिः=आदान=प्रबन्ध, वृक आदाने। ( धियः आविष्ट ) कार्यों की रक्षा करो (पुरधीं जिघृतम्) नगर धारक संस्थाओं का सिंचन करो ( घृ सेचने )। (वनुषा) नेताओं के ( अर्यः ) प्रगतिशील, अगतो ( अराती ) शत्रुओं को ( जजस्तम् ) नाश कर दो।

✵

# जन सेवक वनुः

**इय वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मे इन्द्राय वज्रिणे अकारि ।**
**अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमर्यो वनुषामराती ॥**

ऋ० ७-९७-९ ।

ऋषिः वसिष्ठः । देवता इन्द्रा ब्रह्मणस्पती । छन्दः त्रिष्टुप् ।

मैं वसिष्ठ हूं। अपनी इन्द्रियों व वृत्तियों को वश में कर चुका हूं। मैंने दूसरों के वास का प्रबन्ध किया है। दुर्गुणों का सहार किया है।

आप राष्ट्र में ऐश्वर्यशाली हैं। दुष्टों का दमन करने के लिए वज्र धारण करते हैं। अन्न, धन, बुद्धि, स्तुति और बल के रक्षक तथा वितरक, आप के सहयोगी हैं। अपने सहयोगियों के लिए आपने ब्रह्म का प्रबन्ध किया है, ताकि सारे राष्ट्र मे वितरण ठीक प्रकार होवे।

इस तरह आप का कोष सब तरह से पूर्ण है। आप के प्रबन्ध में किसी चीज की कमी नहीं। इस लिए अब आप अपने सहयोगियों सहित हमारे बुद्धि-पूर्वक किये हुए कार्यों की रक्षा करें तथा उन में प्रगति देवें। नगर को धारण करने वाली प्रवृत्तियों व संस्थाओं का सिंचन करें। वे कभी धन या अन्न की कमी न अनुभव करें। इस के साथ समाज की सेवा करने वाले ( वनुः ) नेताओं के प्रगतिशील शत्रुओं का नाश कर दें, क्योंकि जो शत्रु प्रगतिशील नहीं हैं, वे तो स्वयं ही नष्ट हो जायेंगे।

### परिणाम

१ इन्द्र=परमात्मा व राजा से प्रार्थना करने का अधिकारी बनने के लिए वसिष्ठ बनना आवश्यक है अर्थात् वह (क) जितेन्द्रिय हो. (ख) परोपकारी हो (ग) बुराई से हमेशा लड़ता रहता हो।

२ चारों वर्ण अर्थात् सम्पूर्ण समाज राजा के सहयोगी हैं। उन के सहयोग से ही वह उन का प्रबन्ध करता है। अन्न धन ( वैश्य ) बल ( क्षत्रिय ) बुद्धि स्तुति ( ब्राह्मण ) के रक्षक व वितरक।

३ राजा को अन्न, धन इत्यादि के साथ दण्ड का प्रबन्ध भी बहुत आवश्यक है। अन्यथा व्यवस्था नहीं रह सकती।

४ नेता ( वनु. ) वही सच्चा है जो—

[क] जनता के लिए बोलने वाला हो, जनता के कष्टों की आवाज अधिकारियों तक पहुँचावे। ( वन शब्दे )।

[ख] जनता की अच्छी प्रकार सेवा करने वाला, न कि उन की भावनाओं को उभाड़ कर अपना महत्व बढ़ाने वाला। ( वन सम्भक्तौ–भज सेवायाम् )।

[ग] जनता के लिए मागने वाला, अर्थात् जनता के अधिकारों को मागने वाला तथा उस की सेवा के लिए भीख मागने में भी न हिचकने वाला। ( वनु याचने )।

[घ] जनता को प्रेरणा देने वाला—नया रास्ता दिखाने वाला; कर्तव्य विमूढ़ अवस्था में निश्चित मार्ग दिखाने वाला। (वन प्रेरणे )।

[ङ] जनता की बुराइयों की ओर उस से पहिले अपनी बुराइयों, कमियों की हिंसा करने वाला। ( वन हिंसायाम् )।

५ राजा का कर्तव्य है कि पुरन्धी संस्थाओं का तो सिंचन करे लेकिन वैयक्तिक स्वार्थ को सिद्ध करने वाली प्रवृत्तियों व संस्थाओं का सिंचन न होने देवे। [ शेष पन्द्रह पृष्ठ पर ]

# गुरुकुल संग्रहालय की समुद्रमन्थन की एक मूर्ति

श्री वासुदेव शरण जी अग्रवाल एम ए पी एच डी

समुद्र मन्थन की यह सुन्दर सरदल हरिद्वार से १६ मील दक्षिण पश्चिम में झबरहेड़ी ग्राम जिला सहारनपुर से उपलब्ध हुई है । दो वर्ष पहले जब इस गाव के तालाब का पानी आषाढ़ महीने में बिल्कुल सूख गया तो गाव के लड़कों ने कौतुकवश इसे तालाब से निकाला था । अब यह मूर्ति गुरुकुल कांगड़ी संग्रहालय हरिद्वार में सुरक्षित है यह ऐसी कला शाला में शुभ वृद्धि करती है जिस शैली के उत्तर भारतीय मूर्ति कला में थोड़े से ही नमूने मिलते है यह मटियाले रंग के बलुए पत्थर पर उत्कीर्ण है जिस की पूरी लम्बाई अढ़ाई फुट चौड़ाई तथा मोटाई ११ इञ्च है । जितने अंश में दृश्य उकेरा गया है उस की लम्बाई चौड़ाई २१×५ इञ्च है नमूना दृश्य बहुत ही सजीव है और आकृतियों का संपुंजन बहुत पटुता और सफलता के साथ किया गया है । इस मूर्ति के प्रत्येक अंश में समुद्र मन्थन के अवसर के उपयुक्त अनन्त शक्ति और उस के प्रयोग का सुस्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया गया है । यह बात विशेषत मूर्ति के दोनों पार्श्व की आकृतियों के आसनों और मुद्राओं में स्पष्ट है ।

दृश्य मे अंकित विषय देवताओं और असुरो द्वारा किया गया समुद्र मन्थन है इस में उन्होंने वासुकि को मन्थन रज्जु बनाया था और मंदराचल पर्वत को मन्थन दंड जो कूर्म पृष्ठ पर टिका हुआ था । पौराणिक कथा के अनुसार देवताओं को कनिष्ठ स्थान दिया गया था और उन्होंने सांप के पूंछ वाले पिछले हिस्से को पकड़ा था क्योंकि असुरों ने ज्येष्ठ होने के कारण सांप के शिरोभाग को थाम लिया था । इस चित्र में हम आठ देव मूर्तियों को सांप का लम्बा शरीर पकड़े हुए और उसे अपनी ओर खींचने के लिये शक्ति

समुद्रमन्थन का रेखाचित्र

लगाता हुआ पाते हैं। ये आकृतियां जटाधारी और दाढ़ी वाली हैं। पहले दो के शरीर कुछ तिरछी दशा में दिखाये गये हैं उन के पैर जमीन पर मजबूती से टिके हुए हैं और वे धड़ से पीछे की ओर ज़ोर लगा रहे हैं। पट्ट की दाहिनी ओर से पहली तीन आकृतियों के बीच में दो और सिर दिखाई देते हैं, ये सम्भवतः अनुचर अथवा दर्शक हैं। तीसरी मूर्ति लंगोटी पहने हुए है और सांप उस की दाईं भुजा के नीचे है। इस के गंभीर दिखने वाला लम्बा चेहरा एक उत्कृष्ट शिल्पी की कृति है और यह बात अगली आकृति के चेहरे के सम्बन्ध में कही जा सकती है जो बड़ी तनाव की दशा दशा में है। चौथी आकृति की लम्बी दाढ़ी है और उस ने सांप को दोनों हाथों से पकड़ रखा है। पांचवीं आकृति एक युवा पुरुष की है। अगली तीन आकृतियां भी युवक देवों की हैं।

मूर्ति के बायें सिरे पर केवल एक मूर्ति असुर की है। उस ने सांप का फण पकड़ा हुआ है। यह तिकोनी कुलह टोपी पहने हुए है और इस की इसी आकार की छोटी दाढ़ी है एवं सासानी आकृतियों की भांति नोकदार जबड़े की नोकदार हड्डियां हैं। अन्य आकृतियों के चेहरे सुरक्षित नहीं रहे। इस ओर की पहली और दूसरी आकृतियों के बीच में एक लम्बी सी वस्तु है जिस के चारों ओर सांप का शरीर लिपटा हुआ है यह मन्थन दंड है जो घट में रक्खा होता है और ऐसा जान पड़ता है कि यह नीचे एक पर्वत पर टिका हुआ है।

यह मूर्ति आकृतियों के बाहुल्य और इन की सजीव मुद्राओं से अत्यन्त उत्कृष्ट कला का नमूना है। शैली के आधार पर मैं इस मूर्ति को पिछले गुप्त युग लगभग छठीं या सातवीं शती ईस्वी की समझता हूं।

★

# एक प्रगतिशील संस्था

श्रीयुत विजन कुमार मुखोपाध्याय, जज सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली।

गुरुकुल विश्वविद्यालय के गत दीक्षान्त उत्सव पर मुझे गुरुकुल संग्रहालय में आने तथा इस के विविध विभाग देखने का अवसर मिला।

इस संग्रहालय का उद्देश्य अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय-संस्कृति और आध्यात्मिकता के केन्द्र उत्तर खण्ड के नाम से प्रसिद्ध प्रदेश में पुरातत्वीय अनुसन्धान करना तथा इसे प्रोत्साहित करना है। यह देख कर प्रसन्नता हुई कि संग्रहालय ने गुप्तकाल से सम्बन्ध रखने वाली कुछ मूर्तियां खोजी एवं संग्रहीत की हैं। इस के मुद्रा विभाग में प्राचीन सिक्कों का प्रचुर संग्रह है, मैं ने इस में सिन्धु घाटी की प्रागैतिहासिक सभ्यता को प्रदर्शित करने वाली अनेक प्राचीन और मनोरञ्जक वस्तुयें देखीं। संग्रहालय में संग्रहीत ऐतिहासिक मानचित्र और नक्शे बड़ी संख्या में हैं और ये प्राचीन भारतीय इतिहास के क्षेत्र में अन्वेषण तथा इसका अध्ययन करने वालों के लिये अत्यधिक उपयोगी हैं। यह एक प्रगतिशील संस्था है और इस से सम्बद्ध सभी व्यक्ति मुझे उत्साही कार्यकर्ता प्रतीत हुए।

मैं इस संग्रहालय के दीर्घ जीवन तथा भविष्य में सर्वतोमुखी विकास की शुभ कामना करता हूं।

★

# महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित पत्र

श्री हरिदत्त वेदालंकार

पिछले दिनों श्रीयुत मामराज जी आर्य खतौली निवासी के सौजन्य से गुरुकुल संग्रहालय को महर्षि दयानन्द के दो महत्वपूर्ण पत्र उपलब्ध हुए हैं। इन में से पहले पत्र से स्वामी जी के हरिद्वार में ठहरने के स्थान पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस से यह ज्ञात होता है कि स्वामी जी यहां पर मूला मिस्तरी के बाग में ठहरा करते थे। स्वामी जी ने अपने पत्र में इस का पूरा पता 'कनखल और ज्वाला-के बीच नहर के पुल पर बड़ी सड़क' पर लिखा है। अनुसन्धान करने पर ज्ञात हुआ कि यह बाग अब भी विद्यमान है और ज्वालापुर से हरिद्वार का रेल लाइन के ऊपर नया पुल बना कर जो सड़क १६५० के कुम्भ पर निकाली गयी थी, उसी पर ज्वालापुर से आते हुए पुल का उतार समाप्त होने पर बाये हाथ पर है। आजकल इस बाग के स्वामी मूला मिस्तरी के पौत्र महाशय आशाराम जी हैं जो महर्षि के परमभक्त, संस्कृत के अनुरागी तथा दृढ़ आर्य-समाजी हैं। उन से मिलने पर ज्ञात हुआ कि उन के पितामह महर्षि के अनन्य प्रेमी थे और स्वामी जी हरिद्वार आने पर इस बाग में बनी कोठी मे ठहरा करते थे। यह कोठी अब तक जीर्णावस्था मे है, इस स्थान पर स्वामी जी का कोई स्मारक बन सके तो उत्तम है। यह स्मरण रखना चाहिये कि स्वामी जी हरिद्वार में प्रचार कार्य रेलवे स्टेशन के पास मूला मिस्तरी के खेतों में किया करते थे, यहां आजकल मकान बन चुके हैं। स्वामी जी यहां रहते हुए प्रायः शरीर पर गाचनी मिट्टी का लेप किया करते थे, जब उन से इस का कारण पूछा गया तो उन्होंने अपनी सहज विनोद प्रियता से यह कहा कि मच्छरों से रक्षा के लिए, काटने पर मच्छरों को पहले मिट्टी खानी पड़ेगी। इस पत्र पर दिये नम्बर १००७ तथा मिति माघ शु० १० आदित्यवार सम्वत् १६३५ से यह सूचित होता है कि स्वामी जी अपने पत्र व्यवहार में न केवल सख्या और तिथि किन्तु वार का उल्लेख करने में भी बड़े सतर्क रहते थे।

दूसरा पत्र मिति भाद्रसुदी ४ मंगलवार सम्वत् १६३७ का है। इस में बलदेव सिंह नामक व्यक्ति के सम्बन्ध में स्वामी जी ने अपना रोष प्रकट करते हुए ऐसे असत्यवादी पुरुषों से असन्तोष प्रकट किया है जो बहुत अधिक वचन देते हैं और समय आने पर कुछ नहीं करते। दोनों पत्र जंगलात महकमे के श्री स्वामी कृपाराम जी को लिखे गये हैं। दोनों का अविकल रूप निम्न है।

पहला पत्र

नं०

१००७ श्रीयुत कृपाराम स्वामी आनन्द रहो

ता० १ फरवरी सन १८७६ का लिखा रजष्टर पत्र पहुँचा दे
ख कर आनंदित हो के सभाचार जान के प्रत्युत्तर लिख
ता हूँ वहां रहने वालों से मेरा आशीर्वाद कहना
वहां आने में मुझ को बहुत प्रसन्नता है परन्तु
मैं अनुमान करता हूँ कि जो बन सकेगा
तो सं० १६३६ वैशाख...... आने का संभव है

यहा सहारनपुर से ता० ६ फरवरी रुड़की को जा
के वहां ८ या १५ दिन रह के हरद्वार में जाके कन
ख ( ल ) और ज्वाल पुर के बीच नहर के पुल पर बड़ी
सड ( क ) पर मूला मिस्तरी के बाग में डेढ महिना ठ
हरने का विचार है पछे आप लोगों के यहा
आने का विचार है सो जानिये क्या आप लोगों
से मैं नहीं मिला चाहता ऐसा सभव है

सवत् १९३५ मिति माघ शु० १० आदित्यवार
( दयानन्द सरस्वती )

दूसरा पत्र ( कार्ड )

स्वामी कृपराम जी आनन्दित रहो
इस पत्र का उत्तर हम लिख चुके हैं
हम यहा छ सात दिन रहेंगे जो तु
म शनिवार को आ आगे तो मिल जा
यंगे और एक चिठा बलदेवसिंह के
विषय में हमने भेजी है तुमारे पास
जो पहुँची होगी उसी में बाकी जब
तुम यहा आके मिलो तब सब नि
श्चय होगा और हम पहिले लिख
चुके हैं कि मनुष्यों का आत्मा कपटी
पहिले कहते हैं कि हम ऐसा २ करे
गें पछे वखत परे पर कुछ भी
नहो

मिती भाद्र सुदी ४ मगलवार सवत् १९३७
( दयानन्द सरस्वती )

आर्य जनता से यह निवेदन है कि उन के पास स्वामी दयानन्द जी, श्रद्धानन्द जी तथा अन्य महत्व-पूर्ण व्यक्तियों से सम्बद्ध जो पत्रादि तथा अन्य सामग्री हो, उसे गुरुकुल सग्रहालय के मन्त्री के पास भेजने की कृपा करें। इस से यह सामग्री सुरक्षित हो जायगी तथा प्रकाशित हो सकेगी। इस प्रकार सहायता देने वाले सज्जन आर्यसमाज के इतिहास तथा महर्षि के जीवन पर नवीन प्रकाश डाल सकेंगे।

★

# लेखन एवं मुद्रण में अशुद्धियां और नागरी लिपि में सुधार

श्री चन्द्रकिशोर शर्मा

क बनाने में ब में अंकुश लगता है। यहां भी अंकुश का कुछ अर्थ नहीं है अर्थात् एक अंकुश वाला अक्षर भी अल्प प्राण है और अंकुश विहीन की गिनती भी अल्प प्राणों में ही है। फिर यहां चिह्न ऊ में दीर्घीकरण का काम भी देता है और र में उ की मात्रा है। इसी प्रकार एक अन्य चिह्न ( ̊ ) इ को ई बनाने में दीर्घीकरण है किन्तु आगे चल कर व्यञ्जनों में वही र का अर्द्ध रूप भी बन जाता है। ये कैसे उलझाव हैं। सम्भवतः इनका कुछ उत्तर नहीं है। अब क प रह गये हैं। भले ही ये पायन्त न होते हुए, संयुक्ताक्षर लिखने में निर्बाध एवं निर्भ्रम हैं किन्तु 'सब व्यञ्जन पायन्त' योजनान्तर्गत एक ही नियम में लाने और व्यञ्जनों के अर्द्धक मात्र से यन्त्र लेखन कार्य चल सकने की सम्भावना के विचार से क प को बदल कर अन्य पाई वाले आकार बनाये जा सकते हैं। क के लिए त्न जैसा, नीचे का छोर द की तरह न खींच कर ठ की तरह मिला देने से बनने वाला आकार लिया जा सकता है और फ को, प के प्रथमांश में पाई से पहले एक शोशा देकर या ऊपर की ओर उल्टे अर्द्ध ल ( ट ) में प ई जोड़ कर बनाया जा सकता है।

नागरी लिपि में व्यञ्जन सम्बन्धी 'अक्षराधिक्य की समस्या का विशेषतः लेखन यन्त्र, लाइनो टाइप यन्त्र, आदि के कारण उत्पन्न हुई है—हल करने के लिए कोई-कोई सज्जन प से फ बनाने में लगे हुए अंकुश द्वारा ही सब महाप्राण व्यञ्जन बनाने का सुझाव देते हैं। इस उपाय में अल्प प्राण व्यञ्जन माला नये सिरे से पाई वाले ऐसे अक्षरों वाली निश्चित करनी पड़ती है कि जिन के अक्षरांश पाई को छूते रहें—अलग न हों। इस में क के बदले व लेना होता है और प्रचलित क आकार ख बनता है तब व को बदलना पड़ता है अन्यथा क के लिए ही कोई नया आकार कल्पित करना पड़ता है, यदि चाहते हैं कि भ का यही आकार बने तो भ को ज मानना पड़ता है। इस प्रकार लिखने छापने की सरलता और निर्विघ्नता के लिए कुछ और परिवर्तन भी आवश्यक होता है और उक्त महाप्राण चिह्न के भी अर्द्ध और पूर्ण दो रूप अथवा नये बनने वाले महाप्राणों के अर्द्धक रखने पड़ते हैं क्योंकि युक्ताक्षरों में अर्द्धाक्षरों की आवश्यकता होती है। फिर यह उपाय लेखन यन्त्र के लिए ही उपयोगी है मुद्रण के लिए उस विचार से नहीं। कदाचित इतना परिवर्तन मान्य नहीं हो सकेगा। यदि स्थितिवश ऐसा आवश्यक ही समझा गया तो यह लेखक फ वाले अंकुश के बदले, लेखन और मुद्रण दोनों में एक समान काम देने वाला अपेक्षाकृत कम परिवर्तनकारी अक्षर और पाई के मध्य एक शोशा देकर महाप्राण बनाने का उपाय अधिक उपयुक्त और सरल समझता है जैसा कि ऊपर प से फ बनाने में बतलाया गया है। इस अवस्था म र के लिए, पीछे बतलाये दो आकारों में से अन्तिम आकार लेना होता है। एक अन्य नप य रोमन और उर्दू की भांति ह द्वारा महाप्राण बनाने का है। इसमें महाप्राण चिह्न रखने और उसके दो रूप बढ़ाने की आवश्यकता नहीं होती। यदि शोशे वाला उपाय महाप्राण बनाने में न लिया जाय तो उसको अल्पप्राण द्वित्व के लिए नियत किया जा सकता है। पांचों वर्गों के महाप्राणों का, ङ ञ का और ष ह का द्वित्व नहीं होता। शेष सब का द्वित्व काम आता है। लेखन यन्त्र में इसका लेना आवश्यक नहीं है।

झ घ भ—नागरी लिपि में ये तीन अक्षर ऐसे हैं जिनकी शिर रेखायें अखण्ड नहीं हैं। इनके द्वारा लेखन में असुविधा रहती है शब्दों में शिरो रेखा देने

में अधिक सावधानी रखनी पड़ती है जिस से खों लिखने में अटक पड़ती है अन्यथा अशुद्धि होने का डर रहता है। घ ध के प्रयोग में भी विद्यार्थीगण क्षण भर को तो चकरा ही जाते हैं और 'धन' को 'घन' और 'धड़ी' को 'घड़ी' बना देते हैं। इसके अतिरिक्त यद्यपि उच्चारणक्रम में भेद नहीं है किन्तु 'छद्म' की तरह 'सद्भाव' नहीं बनता और जिस प्रकार 'उद्धार' किया जाता है 'उद्घाटन' नहीं किया जा सकता वैसा करने पर तो लोग उसका 'उद्धाटन' (उद्घाटन) ही करेंगे। अतएव आवश्यक है कि घ को भी अखण्ड शिरोरेखा वाला आकार दिया जाय। इसके लिए संशोधित आकार वह हो सकता है जो घ के आरम्भ में घुण्डी देने या पाई में मिलाने से पहले एक शोशा देने से बनता है। परिवर्तित करने की अवस्था में उसे वह आकार दिया जा सकता है जो अङ्क (६) के निचले छोर को आगे बढ़ा कर पाई मिला देने से बनता। ऐसे आकार शिरोरेखा मुक्त लेखन के लिए भी निर्भ्रम रहते हैं।

ग ण श — नागरी लिपि में ये तीन अक्षर ऐसे हैं जिनके प्रथमांश पाई का नहीं छूते। श लिखने में उसका प्रथमांश पाई में मिल जाता तो कुछ विशेष हर्ज नहीं है। श का दूसरा रूप जो श्र में है सम्भवतः इसी प्रकार बना है किन्तु ग जल्दी में म बन जाता है और ग म से बना हुआ शब्द गम मग मम कुछ भी पढ़ लिया जा सकता है अतः ग भी कुछ संशोधन चाहता है। र के आगे दो पाई वाले ण का अर्द्धांक (ण) भ्रामक है सो ण के बदले, र और प्रथम पाई के मिल जाने से बनने वाला, ण वर्णमाला में लिया जा सकता है।

त ल — लेखन को उच्चारण क्रम देने में त के द्वारा त्त और त्न लिखने में ल का भ्रम हो सकता है और लिखने में रुकना, संभलना पड़ता है। सो अत्य-

ल्प सुधार में तो पर्यन्त ल न लेकर बम्बइया ल लिया जा सकता है। किन्तु पायन्त अक्षरों वाली व्यञ्जन माला के लिए त ल में से किसी एक में कुछ संशोधन आवश्यक होता है। अतः या तो ल के प्रथमांश में न चे (बंगला की तरह) घुण्डी दी जा सकती है अथवा त के बदले त्त लिया जा सकता है क्योंकि तब यह त का द्वित्व नहीं रह सकता। बहुत से व्यक्ति त को उस प्रकार लिखते भी हैं।

व ब — के सम्बन्ध में भी शिकायत रहती है। मुद्रण के छोटे टाइपों में तो इनका जल्द पहचानना प्राय: कठिन ही होता है फलतः हस्त-सम्प्रथन (कम्पोजिंग में कभी-कभी व की जगह ब और ब की जगह व लग जाता है। हस्त-लेखन में तो ब की जगह व लिखा जाना साधारण सी बात हो गई है भले ही इन अक्षरों वाले शब्दों को विद्वज्जन शुद्ध पढ़ लेते हैं किन्तु सर्व साधारण के द्वारा तो उनके उच्चारण कभी-कभी विकृत भी हो जाते हैं और जल्द ही यह भी पता नहीं चलता कि शुद्ध क्या है, परन्तु प ष के विषय में वैसा नहीं होता अतः व को बदलना उचित जान पड़ता है उसके लिए व लिखने में पाई से पहले एक शोशा दिया जा सकता है या ब के बीच की आड़ी रेखा का लेखनी की एक ही लाग में लेते हुए कुछ आगे बढ़ा कर पाई मिला देने से बनने वाला आकार लिया जा सकता है।

नागरी के प्रथम २५ व्यञ्जन, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तवर्ग और पवर्ग पांच वर्गों में बँटे हुए हैं, और अन्त के, ४ अन्तस्थ तथा ४ ऊष्म कहलाते हैं। पाचों वर्गों में अन्तिम अर्थात् पञ्चम वर्ण सानुनासिक हैं। लिखने में सानुनासिकवर्ण और अनुनासिक (अनुस्वार) के प्रयोग सम्बन्धी कुछ नियम हैं। मोटे तौर पर, किसी वर्ग के अक्षर के पहले अनुनासिक ध्वनि आती है तो उस अक्षर में उसी वर्ग का पञ्चम वर्ण मिलाया जाता

है, यथा—अङ्क, पञ्च, कण्ठ, पन्थ, स्तम्भ आदि और अन्तस्थ तथा ऊष्म के किसी वर्ण के पहले अनुनासिक ध्वनि आती है तो उस से पहले अक्षर में अनुस्वार लगाया जाता है—इनके पञ्चम वर्ण नहीं हैं। इस से भिन्न, किसी वर्ग का पञ्चम वर्ण अनुनासिक ध्वनि के लिए किसी अन्य वर्ग और अन्तस्थ व ऊष्म के अक्षरों में नहीं लगाया जाता और वैसा करना नितान्त अशुद्ध माना जाता है। किन्तु परिस्थितिवश मुद्रणादि में पञ्चम वर्ण के बदले अनुस्वार से काम चला लेना विकल्प स्वरूप चल पड़ा है। परन्तु देखने में आता है कि इस छूट के कारण नियमादि की परवाह किए बिना अनुस्वार का प्रयोग खुल कर होने लगा है। यही नहीं पाचों सानुनासिक वर्णों के प्रयोग में भी नियमोल्लङ्घन आज खूब जोरों पर है, जिसके परिणाम स्वरूप रन्क, व्यन्जन, पन्डित, सम्बाद आदि लिखा छपा मिलता है। कभी कभी अर्द्ध न ( ऽ ) का अनुचित प्रयोग भी पाया जाता है। सच पूछिये तो अर्द्ध न का प्रयोग इतना अधिक बढ़ गया है कि कुछ ठिकाना नहीं और द्रुतगति से वह अब अनुस्वार का स्थान भी लेने लगा है, क्योंकि मुद्रण में इसका प्रयोग अनुस्वार की अपेक्षा सरल है। ङ ञ पञ्चम वर्णों के स्थान में यह इस लिए अधिक वर्ता जाने लगा है कि टाइप केसों में इन से बने युक्ताक्षर कभी-कभी नहीं मिलते हैं और इस लिए भी, कि उन्हें ढूँढने के झंझट से छुट्टी मिलती है। कदाचित पूर्ण रूप में इनका काफी उपयोग न होने और तथा कथित कठिनाई सन्मुख आने के कारण ही ङ ञ को वर्णमाला में से निकाल देने की चर्चा चल पड़ी है जिसका अर्थ है कवर्ग, चवर्ग को लँगड़ा बना देना, वर्णमाला के क्रम में विघ्न डालना और तत्सम्बन्धी लेखन नियमों को बेकार कर देना। यदि इन वर्णों का प्रयोग किसी कारण घट गया है तो उस कारण को दूर करना चाहिए न कि इनको ही बहिष्कृत कर देने का विचार लाया जाना चाहिये, इस प्रकार तो एक दिन ण का छोड़ देने की बारी भी आ सकती है।

पञ्चम वर्ण को छोड़, प्रत्येक वर्ग के वर्ण अल्पप्राण और महाप्राण के क्रम से हैं। अल्प प्राणों के द्वित्वाक्षर तो काम आते हैं परन्तु महाप्राणों का द्वित्व नहीं होता जहां ऐसा प्रतीत होता है वहां उस महाप्राण में उस से पहला अल्पप्राण ही संयुक्त होता है, यथा—रक्खा, बग्घा, अच्छा, झज्झर, कत्था, शुद्ध, गुप्फा भम्भर आदि परन्तु इस नियम के विरुद्ध बघ्घी गुफ्फा आदि भी लिखा देखने में आता है। अल्प शिक्षित अथवा नव सिखुए ही ऐसी भूल करते हों सो बात नहीं। बल्कि कोई टाइप फाउण्ड्री भी अल्पप्राणों के द्वित्वाक्षरों की भांति ही महाप्राणों के द्वित्वाक्षर भी ढाल रही है और आवश्यकता अनावश्यकता का बिना विचार किये त्र ग्र आदि की भांति ही न के साथ संयुक्त, प्रायः सभी व्यञ्जनों के युक्ताक्षर बना रही है।

महाजन महोदय ने सरस्वती नवम्बर ५१ में अशुद्धियों के विषय में क्या ही अच्छा लिखा है कि पाठक अब इतने समझदार हो गये हैं कि वे संकेत मात्र से ही लेखक का अभिप्राय ताड़ जाते हैं। अशुद्धियों की कुछ परवाह नहीं करते। इसी लिए तो लेखकों और प्रकाशकों को मुफ्त की सिर दर्दी से छुटकारा मिला है और प्रेसों में प्रूफ रीडर रखने के व्यय को अपव्यय समझा जाता है, कम्पोजीटरों को भी अधिक सावधानी की आवश्यकता नहीं रही। ऐसी अवस्था देख कर कहा जा सकता है कि साधारण क्षेत्रों में हिन्दी मुद्रण का स्टेण्डर्ड निम्न स्तर पर जा रहा है। क्योंकि कौशल-हीनता और नियम विहीनता के अनेक उदाहरण सन्मुख आते रहते हैं।

नागरी का क्षेत्र हिन्दी भाषा और कुछ प्रदेश तक

सीमित न रह कर अब अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक एव टेक्निकल शब्दों और अन्य भाषाओं को लिखने तक विस्तृत हो रहा है। हमें बहुत से नये शब्द घड़ने हैं सम्भवत उन में कुछ नये युक्ताक्षर भी आ सकते हैं। 'उद्जन' का विस्तार कम करने के लिए द ज सयुक्त और न मालूम क्या-क्या बनाना पड़ जाय। तब तो हम नागरी का टाइप फॉण्ट बढ़ा बढ़ कर फाउंड्रियों और प्रेस कर्मचारियों का सिर दर्द बढ़ाते ही जायेंगे। यदि हम युक्ताक्षरों की विचित्रताओं और जहां तहां मात्रादि चिह्न लगा देने के चक्कर में फँसे रहे और यान्त्रिक सुभीतों के विचार से लिपि सुधार की ओर शीघ्र ही सजग न हुए तो हिन्दी भाषा और विशेषत नागरी लिपि का प्रचार-प्रसार बहुत समय तक सम्भव न हो सकेगा और कदाचित हो सकता है कि कोई सरल यन्त्र सुलभ विदेशी लिपि इसका स्थान ले ले। यह मान लिया गया है कि नागरी लिपि म सुधार आवश्यक है परन्तु यदि उसके लिए कुछ किया नहीं जाता है तो लिपि सुधार का प्रश्न उठाया जाना निरर्थक ही है।

प्रस्तुत लेख म लिपि दोष से होने वाली अशुद्धियों और कठिनाइयों की ओर सकेत मात्र किया गया है। पढ़ने-लिखने और छापने वालों के सन्मुख ऐसी बाते अक्सर आती रहती हैं। भले ही कुछ बातें छोटी है परन्तु वैसा समझ कर उन्हें उपेक्षित नहीं कर दिया जाना चाहिये फिर तो बड़ी बातों को भी उपेक्षित कर देने की बारी आ सकती है।

लेखन एव मुद्रण में सादृश्य लाने, अशुद्धिया दूर करने और कौशल हीनता मिटाने में निम्नलिखित उपाय हितकर हो सकते हैं—

नागरी वर्णमाला के प्रचलित अक्षरों, मात्राओं, अकों आदि पर पुनर्विचार कर, आवश्यक सशोधन व परिवर्तन के पश्चात् एक चार्ट तैयार किया जाय जिस में प्रत्येक अक्षर का एक ही सरल एव निर्भ्रम आकार हो जिसका मूल रूप संयुक्ताक्षर लिखने में विकृत करने की आवश्यकता न रहे प्रत्येक व्यञ्जन के पूर्ण और अर्द्ध केवल दो रूपों से काम चल सके। अन्य भाषाओं को यथाशक्य शुद्ध स्पष्ट लिखने के लिए जिन नये ध्वनि चिह्नों की आवश्यकता हो—कल्पित किये जाय। विराम चिह्न गणित चिह्न व्यापारिक चिह्न आदि सभी चिह्न जो एक फाउंट में आवश्यक हों इस चार्ट में सम्मिलित किये जाय। इस चार्ट के अनुसार ही टाइप फाउंड्रिया टाइप निर्माण करें।

लेखन नियम सम्बन्धी एक अन्य चार्ट बनाया जाय। नियम मे बध कर चलना चलाना सदैव अच्छा होता है नियम विहीनता में कृत कार्यता नहीं होती।

ये दोनों चार्ट शिक्षण-सस्थाओं, प्रेसों, टाइप फाउंड्रियों, नामपट लेखकों आदि सभी को सुलभ जानकारी के लिए प्रचारित किये जाय और पुस्तक विक्रेताओं के यहां विक्रयार्थ रख दिये जाय ताकि लेखन, मुद्रण में मनमानी न होने पावे।

प्रेसों में प्रूफ रीडर ऐसे व्यक्ति रक्खे जाय जो शैक्षणिक योग्यता वाले ही नहीं प्रेस सम्बन्धी सभी कामों का क्रियात्मक ज्ञान भी रखते हों।

जब तक कर्न्ड टाइपों के छोड़ने का उपाय निकले कम्पोजीटरों को चाहिए कि वे कर्न्ड टाइप की जगह पूरी बॉडी वाला टाइप न लगायें। अन्यथा उन्हें हिन्दी का सर्वाङ्गपूर्ण टाइप फॉण्ट कभी भी प्राप्त नहीं हो सकेगा और ऐसी कौशलहीनता बढ़ती ही रहेगी। इस कौशल हीनता के दोषी वही समझे जाते हैं। ज्यों त्यों काम चला लेने की नीति इस कला को नीचे गिराने वाली है।

★

# वैदिक शब्दों का सही अर्थ

श्री भगवद्दत्त वेदालंकार

वैदिक शब्दों का सही अर्थ क्या है ? इस की छानबीन करना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि शब्दों का ठीक २ अर्थ निर्धारण न होने पर शब्दों के मनघडन्त अर्थ किये जाते हैं। जिस का परिणाम यह है कि मनुष्य अपनी मति व रुचि के अनुकूल वेद के अर्थ कर लेते हैं। इसलिए इस दोष के निराकरण के लिए शब्दों पर पूर्ण रूप से विचार होना चाहिये। हमने इस लेख में दो तीन वैदिक शब्दों पर विचार कर उन के स्वरूप निर्धारण का प्रयत्न किया है। यह आवश्यक नहीं कि हम प्रकार शब्दों के सही अर्थ के निर्धारण में हम पूर्ण सफल हो सकेंगे, परन्तु इस दिशा में प्रयत्न अवश्य होना चाहिये। अब हम क्रमशः दो तीन शब्दों पर विचार करते है

### प्रसव—उत्पत्ति

लौकिक व्यवहार में हम प्रसव और उत्पत्ति को एक ही समझते हैं। परन्तु वेद की दृष्टि से इन में महान् अन्तर है। प्रसव का सम्बन्ध सविता से है और उत्पत्ति का सम्बन्ध अग्नि से है। उत्पत्ति का अर्थ है ऊपर को गति होना उत् + पत्=आरोहण=रोहण=रोहित। यह आरोहण अग्नि का धर्म है। पृथिवी में बीज डाले कुछ समय पश्चात् अंकुर रूप में उत्+पत् अर्थात् ऊपर को गति प्रारम्भ हो जाती है। यह ऊपर को गति अर्थात् आरोहण करना अग्नि का धर्म है। परन्तु प्रसव में यह प्रक्रिया नहीं है। और प्रसव का सम्बन्ध अग्नि से न हो कर सविता से है। यह ठीक है कि वृक्ष वनस्पति आदि की उत्पत्ति सूर्य और पार्थिव अग्नि के मेल का परिणाम है। इसी प्रकार शरीरधारी अन्य प्राणियों की उत्पत्ति नर मादा के संयोग से है। यह सब प्रजनन सविता के अधीन तो है परन्तु प्रसव का पर्यायवाची शब्द उत्पत्ति नहीं हो सकता। प्रसव का मुख्य भाव निचुड़ने से है। आयुर्वेद के सिद्धान्त के आधार पर मनुष्य के शरीर में व्यापक वीर्य प्रसुत हो कर शिश्न में पहुँचता है और वहां से स्त्री गर्भ में यह प्रसव है। इस अवस्था में प्रसव की प्रक्रिया समाप्त हो गई। प्रसवोन्मुखी स्त्री के लिये जो प्रसव शब्द का प्रयोग रूढ़ि हो गया है वह भी शिशु के मातृ गर्भ से नीचे पृथिवी पर आने की प्रक्रिया व सादृश्य के कारण है। इसी प्रकार हमारे शरीर में से शरीर के अन्य नीचे के अंगों को जो आदेश पहुँचते हैं वे सविता के प्रसव हैं। इस प्रकार ऊपर से नीचे को आना सविता के अधीन है और नीचे से ऊपर को जाना अग्नि का धर्म है। तालिका में इसे हम इस प्रकार रख सकते हैं।

| | |
|---|---|
| सविता | अग्नि |
| प्रसव | उत्पत्ति |
| अवरोहण | आरोहण |
| सूर्य | पृथिवी |
| पुरुष | स्त्री |
| वीर्य | रज |

इस प्रकार हम ने यह तालिका दिखाई। कहने का भाव यह है कि प्रसव शब्द के उत्पत्ति अर्थ कर देने से ही काम न बनेगा। उस का विशिष्ट स्वरूप व व्युत्पत्ति जन्य भाव हमारे सामने आ जाना चाहिये इस से हम प्रत्येक क्रिया में यह जान सकते हैं कि प्रसव का कितना अंश होगा और अन्य क्रियाओं आदि का कितना होगा।

### गीः—(वाणी)

अगला शब्द 'गीः' है। धातु पाठ में दो धातुएं हैं, गॄ शब्दे और गॄ निगरणे। प्रतीत ऐसा होता है कि वैदिक युग में 'गॄ' निगरणे एक ही धातु होगी। गॄ धातु से उत् और नि उपसर्ग लगा कर उद्गिरण

व निगरण ये दो शब्द बनते हैं जो कि दो क्रियाओं को बताते हैं, जिन को हम भाषा में उगलना व निगलना कह सकते हैं। ध्वनि व शब्द में भी यही निगलने व उगलने की प्रक्रिया होती है। वाणी मन में विद्यमान विषय को निगल कर फिर बाहिर उगल देती है। शतपथ ब्राह्मण १।४।५ में मन और वाणी की श्रेष्ठता का विवाद चला है। वहां पर मन ने अपनी श्रेष्ठता का जो हेतु दिया है वह यही है कि जो मन में होता है उसी को लेकर वाक् सेविका की तरह बाहिर उगल देती है। इसलिए हमारी धारणा यह है कि वास्तविक धातु गॄ निगरणे है। शब्द को विशेषता देने के लिए सामान्य गॄ धातु से उसे पृथक् करके दिखा दिया है। इस रहस्य को न समझने के कारण होता यह है कि वेद में जिस स्थल पर 'गौ' शब्द आता है, वहां पर हम उस का वाणी अर्थ कर देते हैं। इस से कई मन्त्र अत्यन्त अस्पष्ट व असंगत से रह जाते हैं। उदाहरण के तौर पर दो एक मन्त्र हम यहां दिखाते हैं।

यदग्ने दिविजा अस्यप्सुजा वा सहस्कृत।
तं त्वा गीर्भिर्हवामहे।

हे बलशालिन् अग्नि! जो तू द्युलोक में उत्पन्न हुई अथवा जल में उत्पन्न हुई है उस तुझ को हम वाणियों द्वारा आह्वान करते हैं। अब इस मन्त्र पर ज़रा विचार कीजिये कि जो द्युलोक में उत्पन्न होने वाली अग्नि है और जल में पैदा होने वाली अग्नि है वह कौनसी हो सकती है? हमें यह मानना पड़ेगा कि द्युलोकस्थ अग्नि सूर्य से उत्पन्न होने वाली अग्नि है, ताप है, और जलीय अग्नि विद्युत् है अर्थात् जल से पैदा होने वाली बिजली। अब विचारणीय यह है कि इन को वाणी से कैसे बुलावें? वाणी से बुलाने का मतलब ही कुछ नहीं। परन्तु यदि 'गौ' का अर्थ हम निगलने उगलने वाली कर लेवें तो सब समस्या हल हो जाती है। ये निगलने उगलने वाली तारें हैं जिन के द्वारा बिजली एक स्थान से दूसरे स्थान को जाती है। और सूर्य से आने वाली अग्नि किरणों द्वारा निगली व उगली जाती है। इस से मन्त्र सुसंगत व स्पष्ट हो जाता है। इसी दृष्टि से 'गाः' के अनेकों स्थलों में विभिन्न अर्थ हो सकते हैं। ये नस नाड़िया (नर्वस सिस्टम सरकुलेटरी सिस्टम) आदि भी 'गौः' नाम से कही गई हैं। ये भी मस्तिष्क से आज्ञा ले कर अन्य अंगों के पास पहुँचाती हैं। हृदय से रक्त लेकर सर्वत्र पहुँचाती हैं।

ऋ० ८।३।२० में कहा गया है कि 'गनः सोम इन्द्रियो रसः' अर्थात् ऐन्द्रियिक रस सोम है। यह ऐन्द्रियिक सोम जब गौः' में भरा हुआ कहा गया हो तो वहां 'गौः' से नस नाड़ियां अर्थ ले सकते हैं। एक मन्त्र है—

त्वमु सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्।
आच्यावयस्यूतये।

हे इन्द्र! तू उस सोम को जो (विश्वासु गीर्षु) सम्पूर्ण नस नाड़ियों में व्याप्त है उस को (ऊतये) हमारी रक्षा के लिए (आच्यावयसि) च्युत व प्रवाहित करते हो।

### जराबोध

'जराबोध' शब्द वेद में इन्द्र का विशेषण हो कर आया है। इसका अर्थ प्रायः विद्वान् यह करते हैं कि 'जरास्तुतिर्जरतेः स्तुतिकर्मणस्तां बोध तयाबोधयितारात वा' नि० १०। ८ अर्थात् वह इन्द्र भक्त की स्तुति को जानता है और स्तुति से अपने आप को भक्त के प्रति प्रकाशित करता है।—इत्यादि अर्थ जराबोध के किये जाते हैं। परन्तु 'जराबोध' में जरापद के अर्थ बदलने पर और भी अर्थ हो जाते हैं। जरा पद क्षीणता व बुढ़ापा (जॄ वयोहानौ) आदि के लिए भी प्रयुक्त होता है। उपर्युक्त अर्थ होने पर 'जराबोध' का भाव यह होगा कि वह इन्द्र बुढ़ापे व क्षीणता में जागृत होता

# कवि से

श्रीरामप्रताप आर्य

छेड़ अपनी तान रे कवि !

गीत गा जिस से कि होवे, राष्ट्र का उत्थान रे कवि !

मत सुना श्रृंगार रस का, गान हम को आज कोई,
शान्त, करुणा का सुना मत भाव अपना आज कोई,
व्योम की ऊंची उड़ानों-का समय अब जा चुका है,
वेदनामय विरह गीतों का समय अब जा चुका है,
आज हम तुझ से सुनेंगे एक विप्लव गान रे कवि !

देख पर-शोषण से पुष्टि कर रहा है आज कोई,
लूट की सम्पत्ति से घर भर रहा है आज कोई,
देख दीनों की दशा क्या मन दुखित होता नहीं है ?
यन्त्रणायें देख उन की क्या कभी रोता नहीं है ?
आज उन का दुःख मिटाने की हृदय में ठान रे कवि !

गान तेरे सुन सभी में प्राण का सञ्चार होगा,
दूर होगी यह विषमता, साम्य का विस्तार होगा
कर भला इस देश का अब गीतिकाओं को सुना कर,
भर हृदय में राष्ट्र भक्ति देश की सेवा सिखा कर,
समय आने पर करें सब प्राण भी बलिदान रे कवि !

★

है। जवानी की गरमी उस परमैश्वर्यवान् भगवान् का बोध होने नहीं देती, परन्तु ज्योंही जवानी ढलती है, जोश ठंडा पड़ता है त्योंही मनुष्य पछताया करता है कि जवानी यूं ही खो दी। भगवान् का भजन तक नहीं किया। इसी प्रकार क्षीणता, कष्ट व आपत्ति में मनुष्य भगवान् को स्मरण करता है पर सुख में नहीं।

सन्त के उद्गार हैं—

दुःख में सुमिरन सब करें सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करें तो दुःख काहे होय॥

हमारा उपर्युक्त कथन का देने का भाव यह है कि स्तुति परक जृ' धातु और क्षीणता वार्धक्य को बताने वाली जृ' (वयोहानौ) धातु ये दोनों धातुएं किसी प्राचीन समय में एक ही होंगी क्योंकि क्षीणता, बुढ़ापा व दुःख का स्तुति से स्वाभाविक सम्बन्ध है। ये एक अवस्था के दो पहलू हैं। इसका यह भाव नहीं है कि जवानी में भगवान् की स्तुति नहीं हो सकती, जवानी में भगवान् की भक्ति करने वाले विरले ही पुरुष होंगे। और वह भी उन के विगत जन्म में सञ्चित प्रारब्ध का पुण्य प्रताप होगा कि जो जवानी में भी भगवान् के अनन्य भक्त बने।

★

# व्यायाम

श्री ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य

किसी प्रकार की कसरत अथवा एक्सरसाईज़ करने को व्यायाम कहते हैं। व्यायाम के बिना कोई भी स्वस्थ और बलवान नहीं हो सकता। बालकों को छोटी आयु से ही इसे आरम्भ कर देना चाहिए। १६ वर्ष की आयु से २४ वर्ष तक खूब व्यायाम करें तो शरीर आयु भर के लिए गठ जाता है।

हमारे शरीर की बनावट ही ऐसी है कि यह काम काज करने और हिलने जुलने के लिए बनाया गया है। नन्हें बालक को लिटा दो तो वह स्वय ही हाथ-पैर मार कर व्यायाम कर लेता है। जब कुछ बड़ा होता है तो खूब भागता, कूदता और खेलता है। जिस समय लड़के लड़कियां और भी बड़े हो कर बातों को समझने बूझने लगते हैं तो यदि वे व्यायाम छोड़ बैठें उनके शरीर निर्बल हो जाएंगे, भद्दे हो जाएंगे, रोगी रहा करेंगे। पढ़ने में चित्त नहीं लगेगा और पढ़ा हुआ याद भी जल्दी न कर सकेंगे।

व्यायाम करने से शरीर सुडौल और सुन्दर बनता है। बहुत पतला मोटा हो जाता है और बहुत कमज़ोर तगड़ा हो जाता है। व्यायामी का शरीर कठोर और बलपूर्ण होने पर भी हलका और लचकदार होता है। व्यायाम खूब परिश्रम कर सकता है और काम काज को भली प्रकार सम्पन्न कर डालता है। थकावट और सुस्ती का उसके पास नाम नहीं। वह वृद्धावस्था में भी नवयुवकों के समान काम कर सकता है। वस्तुतः में वह बूढ़ा होता ही नहीं। श्वास की गति लम्बी और नियमित हो जाने से उसकी आयु भी बढ़ जाती है और सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, सुख दुःख आदि को समान रूप से सहन कर सकता है।

व्यायाम करने से प्राण वायु अधिक मात्रा में अन्दर जाती है जिस से रक्त अधिक बनता है और देह दोष जल कर बाहर निकल जाते हैं। मुख के ऊपर लालिमा आती है और पाचनशक्ति बढ़ जाती है। इस का परिणाम यह होता है कि देह में रक्त, मांस, हड्डी आदिक वस्तुएं ठीक-ठीक बनती हैं और फालतू अर्थात् मल, मूत्र पसीने आदि के द्वारा ठीक ठाक निकलता रहता है। कब्ज़ कभी नहीं होती जोकि बहुत से रोगों की जड़ है। व्यायामी पुरुष वा स्त्री यदि किसी समय भूल से गला-सड़ा और कच्चा भोजन भी खा ले तो हजम कर लेता है।

व्यायामी मनुष्य से जिस प्रकार रोग परे रहते हैं उसी प्रकार उसके शत्रु भी डरते रहते हैं। व्यायामी में तेज उत्साह होता है और अधिक सामर्थ्य से लोक सेवा कर सकता है। डूबते हुए को बचाना, लगी आग को बुझाना, चोर डाकू को भगाना व्यायामशील साहसी वीर का ही काम है।

व्यायाम प्रति दिन करने का अभ्यास डालो। किन्तु बहुत अधिक भी व्यायाम न करो। इस से आयु और बल क्षीण होते हैं और खांसी, दमा (श्वास) वमन आदि रोगों के उभरने का भय है। जो घोड़ा सारा दिन गाड़ी में जुता हुआ चलता रहता है तो वह जल्दी बूढ़ा हो जाता है। एक समय व्यायाम करते करते जब इतना सांस चढ़ कि मुंह खोल कर श्वास लेने की आवश्यकता होने लगे तो व्यायाम बंद कर दो। छाती पर जब पसीना आ जाए तो रुक जाओ और अपनी शक्ति से थोड़ा कम ही व्यायाम करो। अधिक मात्रा में करके शरीर को थका मत डालो।

व्यायाम का समय प्रातःकाल अथवा सायंकाल कोई भी नियत कर लो। जब पेट भर कर खाया हुआ हो अथवा भूख बहुत लग रही हो तब व्यायाम न करो। व्यायाम करने के पश्चात् तत्काल ही खुली हवा में स्नान न करो। जिस समय शरीर की गर्मी और श्वास की गति कम हो जाय उस समय स्नान करो। व्यायाम करने के पश्चात् ठंडा जल और शर्बत आदि न पिओ। दूध, मलाई, मक्खन, बादाम घी आदि पौष्टिक

[ शेष पृष्ठ ३२ पर ]

# साहित्य-परिचय

[ प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं। एक पुस्तक प्राप्त होने पर केवल प्राप्ति स्वीकार दिया जा सकेगा। —सम्पादक ]

वैदिक कर्तव्य शास्त्र—लेखक पं० धर्मदेव विद्या-वाचस्पति। प्रकाशक, प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल विश्व-विद्यालय कांगड़ी, जि० सहारनपुर, उत्तर प्रदेश। पृष्ठ संख्या २६०, मूल्य १ रुपया ८ आना।

श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति विरचित वैदिक कर्तव्य शास्त्र का आद्योपान्त अवलोकन किया। मुझे यह लिखते हुए हर्ष होता है कि पुस्तक में मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के कर्तव्यों का निर्देश वेद एवं शास्त्रों के आधार पर बड़ी सुन्दरता एवं रोचक रीति से किया गया है। मानवता के पूर्ण विकास के लिए जो अपरिहार्य तत्व हैं जैसे विश्वबन्धुत्व निर्भयता सामाजिक एवं वैयक्तिक कर्तव्य, आध्यात्मता, आत्म संयम, वर्णाश्रम धर्म, राष्ट्र के प्रति कर्तव्य, स्वतन्त्र संरक्षण, सर्व समविकास आदि उन समस्त अमूल्य वैदिक उपदेशों का उत्तम एवं प्रशस्त संकलन इस ग्रन्थ में हुआ है। इस प्रकार की वैदिक संस्कृति एवं परम्पराओं के दिग्दर्शन से वेद एवं भारतीय शास्त्रों का महत्व तथा गौरव की छाप मानव हृदय पर अवश्यम्भावी है। पण्डित जी स्वयं आप जगत् के प्रतिष्ठित विद्वान् एवं प्रवक्ता हैं। तदनुरूप ही यह ग्रन्थ भी है, इस में किंचित भी सन्देह नहीं। वैदिक आदर्शों एवं भावनाओं के जिज्ञासुओं के लिए यह एक अपूर्व ग्रन्थ है। आशा है जनता इस से पूर्ण लाभ उठायेगी।

—द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री।

प्रतिभाशाली देशभक्त—लेखक डॉक्टर राम प्रताप सिंह और ठाकुर उदयवीर सिंह। प्रकाशक—उदयवीर प्रकाशन, पो० बज्रांगा, बीकानेर। आकार २०×३०/१६, पृष्ठ संख्या २४६, सजिल्द, सचित्र, मूल्य ४)।

पुण्य भूमि भारत की आजन्म सेवा करने वाले देश भक्तों के उज्वल चरित्र देशवासियों के सामने रखने के उद्देश्य से इस पुस्तक की रचना की गई है। सर्व श्री महात्मा गांधी, सुभाषचन्द्र बोस, बाल गंगाधर तिलक गोखले मदन मोहन मालवीय, जवाहर लाल नेहरु, सरोजनी नायडू, लाजपतराय, स्वामी रामतीर्थ आदि प्रसिद्ध राष्ट्र कर्मियों के साथ-साथ महाराजा फतहसिंह, महाराजा गंगासिंह, जाम साहिब और प्रसिद्ध लेखिका तोरुलता के चरित्रों का सजीव चित्रण हम इस पुस्तक में पाते हैं लेखन शैली सरस और सुन्दर है। हमारे लोकनायकों के चरित्रों को ऐसे रोचक तथा हृदयग्राही तरीके से प्रस्तुत किया गया है कि पुस्तक पढ़ना प्रारम्भ कर के समाप्त किये बिना छोड़ने को मन नहीं करता। कल जिन के हाथों में हमारे देश की बागडोर आनी है राष्ट्र की निधि उन बच्चों को स्कूलों में ही भारतीय इतिहास की विमल कीर्ति के इन पृष्ठों को पढ़ने के लिए देना चाहिये। इस पुस्तक को देश विदेश की बारह भाषाओं में प्रकाशित करने के विचार का और अन्य देश भक्तों के शब्द चित्रों को दूसरे भागों में प्रकाशित करने के आयोजन का हम स्वागत करते हैं। हम चाहते हैं कि इस पुस्तक का अधिकाधिक पठन-पाठन हो।

—रामेश बेदी।

★

# गुरुकुल-समाचार

## ऋतु

ज्येष्ठ मास के पूर्वार्ध में खूब गर्मी पड़ती रही। धूल भरी आंधियां भी बीच-बीच में आती रहीं। बाद को मौसम में अद्भुत परिवर्तन आ गया। रह-रह कर वर्षा की झपटें आती रहीं। जिस से वातावरण बहुत शीतल और सुहावना हो गया। धूप-छांह का खेल होता रहा वर्षा के कारण वन-बाग और मैदानों में हरियाली छा गई है। रामदेव मार्ग की अमलतास-वीथी के वसन्ती फूलों का अपूर्व शोभा और सुवास फैल रही है। ग्रीष्मकाल के विविध पक्षियों से कुल-उपवन गूञ्ज उठे हैं। कोयल और पपीहे के मधुर आलाप खूब सुनाई देते हैं।

## मान्य अतिथि

आजकल गर्मी की छुट्टियाँ होने से गुरुकुल में अतिथियों का आवागमन विशेष रहता है। पिछले दिनों निम्नलिखित विशेष अतिथि गुरुकुल में पधारे। आगरे के प्रसिद्ध कवि और आर्यमित्र के सम्पादक श्री प० हरिशंकर जी शर्मा कविरत्न आर्यविद्वान् श्री बाबू पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट, नागरिक सम्पादक स्नातक उमेशचन्द्र जी आगरा। पोरबन्दर आर्य कन्या गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री चतुरभाई बी० पटेल तथा वहां की चालीस छात्राएँ व अध्यापिकाएँ। लखनऊ ट्रेनिङ्ग कालेज के अध्यापक श्री लक्ष्मी नारायण जी गुप्त इन दिनों गुरुकुल में रह कर आर्यसमाज के साहित्य का अनुशीलन कर रहे हैं।

## सरस्वती-यात्रा

ग्रीष्मावकाश में महाविद्यालय विभाग के छात्रों की दो मण्डलियाँ काश्मीर यात्रा के लिए गई हैं। विद्यालय विभाग के ६ म से १० म श्रेणी तक के छात्र देहरादून जिले के प्रसिद्ध पर्वतीय स्वास्थ्यप्रद स्थान चकरौता गए हैं। छुट्टियों-भर ये सब छात्र चकरौता को केन्द्र रख कर समीपस्थ पर्वतों का परिभ्रमण करेंगे। छात्रों के साथ उन के गुरुजन और चिकित्सक भी गए हैं।

## तैरी प्रतियोगिता

गत १० मई को गुरुकुल के बड़े छात्रों की तैरी प्रतियोगिता आयोजित हुई थी। इस में गुरुकुल के सप्तम श्रेणी से ले कर उच्चतम कक्षा के छात्रों ने भाग लिया था। उस दिन गुरुकुल घाट पर प्रेक्षकों की बड़ी रौनक रही। प्रतियोगिताओं में विशेष कौशल प्रदर्शित करने वाले छात्रों को नहर विभाग के स्थानीय उच्चतम अधिकारी द्वारा पारितोषिक वितीर्ण किए गए। यशस्वी छात्रों का विवरण इस प्रकार है।

तीन मील की लम्बी तैरी में पुरस्कार विजेता—

ब्र० ब्रह्मदेव ८ म श्रेणी

ब्र० कृष्णचन्द्र ७ म श्रेणी

ब्र० मूलशंकर ८ म श्रेणी

सिंह तैरी के विजेता—

ब्र० बनराज ८ म

ब्र० राजेन्द्र ( बलिया ) ११ श

ब्र० ब्रह्मदेव तथा ब्र० दयाकर।

लम्बी डुबकी में ब्र० राजेश्वर १० श्रेणी प्रथम आया। खड़ी डुबकी में ब्र० नरपति १४ श प्रथम रहा। ब्र० नरपति दो मिनिट चालीस सैकण्ड जल में रहा। तैरी के विविध प्रकार के कलाबाजीपूर्ण प्रदर्शन में ब्र० प्रह्लाद कुमार ४ श्रेणी ने पुरस्कार पाया। लम्बी कूद में ब्र० धर्मदेव १२ श पुरस्कार-भागी रहा।

पुनः २३ मई को छोटे छात्रों (प्रथम श्रेणी से ले कर ६ ष्ठ श्रेणी तक) की तैरी प्रतियोगिता हुई। जिसका वृत्तान्त इस प्रकार है—

आधे मील की लम्बी तैरी में निम्नलिखित छात्र

पुरस्कारभागी हुए ।

१ ब्र० सुरेन्द्रकुमार ( कलकत्ता ) ६ ह
२ ब्र० कृपाकर ८ म
३ ब्र० अश्विनीकुमार ६ ह

सिंह तैरी के विजेता—

ब्र० कृपाकर ५ म
ब्र० अश्विनीकुमार ६ ष्ठ
ब्र० बदरीनाथ ६ ष्ठ

लम्बी डुबकी में ब्र० दीनानाथ ६ ष्ठ और खड़ी डुबकी में ब्र० राजनारायण ६ ष्ठ पुरस्कारभागी हुए। लम्बी कूद में ब्र० अश्विनी कुमार तथा कलात्मक कूद में ब्र० ओम् प्रकाश को पुरस्कार प्राप्त हुआ।

## स्वर्गीय स्नातक चन्द्रकांत जी

गुरुकुलीय जगत् और आर्य जगत् में यह समाचार बड़े दुःख से सुना जायगा कि गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक श्री प० चन्द्रकांत जी वेदवाचस्पति ( सूपा गुरुकुल के आचार्य ) का गत १२ मई को बम्बई के हरकिसन हास्पिटल में हार्निया के आपरेशन के पश्चात् देहावसान हो गया। स्वर्गीय प० जी आर्य संसार के चमकदार व्याख्याता और अध्ययनशील विद्वान् थे। अपने छात्रकाल में भी अपनी भाषण कला में विशेष यशस्वी रहे थे। गुरुकुल से शिक्षा समाप्त करके आप सोनगढ़ गुरुकुल ( सौराष्ट्र ) के आचार्य बने थे। वहां पर कई वर्षों तक योग्यता पूर्वक कार्य करने के पश्चात् आपको सूपा गुरुकुल ( जि० सूरत ) का आचार्य बनाया गया था। गुजरात में व्याख्यान और लेखन द्वारा आपने आर्यसमाज, वैदिक धर्म और गुरुकुल की अपूर्व सेवा की थी। अनेक विद्वत् परिषदों में आपने अपनी अध्ययन प्रचुर विद्वत्ता का अच्छा सिक्का बैठाया था। आप के अकाल और विस्मय-जनक अवसान से आर्यजगत् को विशेषतः गुजरात प्रांत की आर्य सामाजिक कार्यप्रवृत्तियों को तथा गुरुकुल सूपा को बड़ी भारी क्षति पहुँची है। गुरुकुल विश्वविद्यालय के समस्त ब्रह्मचारी, गुरुजन, कार्यकर्ता और स्नातक बन्धु उनकी विविध सेवाओं के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उन के समस्त आत्मीय-जनों और मित्रों के साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति और समवेदना व्यक्त करते हैं। अपनी बन्धु-स्था गुरुकुल सूपा के कार्यवाहकों और ब्रह्मचारियों के दुःख में विशेष रूप से समभागी होते हैं। परमपिता परमात्मा दिवंगत पंडित जी की आत्मा को चिर शांति प्रदान करें।

## श्रद्धानन्द सेवाश्रम

वैशाख मास में श्रद्धानन्द सेवाश्रम के चिकित्सालय में कुल १७६० रोगियों ने लाभ उठाया। चिकित्सालय में प्रविष्ट रोगियों की संख्या ५६ थी। आपरेशन भवन में छोटे-बड़े कुल २३ आपरेशन किए गए। प्रविष्ट रोगियों में २६ औषध विभाग के तथा ३० शल्य विभाग के रोगी रहे। रोगियों का विवरण इस प्रकार है—

६६६ पुरुष ५५३ स्त्रियां, ५३८ बच्चे।

एक्स रे तथा निदान प्रयोगशाला का क्रमशः ३६ और ४३ व्यक्तियों ने लाभ उठाया।

## गुरुकुल संग्रहालय

भूगर्भ की नई सामग्री—गत मास संग्रहालय में बहुत महत्वपूर्ण सामग्री की वृद्धि हुई है। लखनऊ विश्वविद्यालय के भूगर्भ विभाग के सौजन्य से चट्टानों, खनिजों तथा प्रस्तरीभूत अवशेषों ( फासिल्स ) का एक सुन्दर प्रतिनिधि संग्रह प्राप्त हुआ है, इसके लिए संग्रहालय उक्त भूगर्भ विभाग का, इसके अध्यक्ष श्री एस० आर० नारायण तथा डा० रमेशचन्द्र जी मिश्र का अत्यधिक आभारी है जिन के सौजन्य से यह वस्तुयें मिली हैं। इन से संग्रहालय देखने आने वालों का भूगर्भ विषयक ज्ञान का स्तर ऊंचा उठेगा।

मध्य भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के संचालक श्री डी. आर. पाटिल के सौजन्य से संग्रहालय को मध्य भारत के पुरातत्त्वीय अवशेषों के बड़े साइज के १० फोटो प्राप्त हुए हैं। गतवर्ष भी इन्होंने कुछ नागवंशी सिक्के भेजकर संग्रहालय की सहायता की थी। संग्रहालय इस कृपा के लिए इन का अनुगृहीत है।

श्री राय कृष्णदास जी संचालक भारतकला भवन हिन्दू विश्वविद्यालय काशी तथा डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल के सौजन्य से हम ऐतिहासिक महापुरुषों के २० प्रामाणिक प्रतिकृति चित्र प्राप्त हुए हैं। ये प्राचीन मूर्तियों, सिक्कों और चित्रों के आधार पर तय्यार किये गये हैं। इन में सम्राट् चन्द्रगुप्त, महाक्षत्रप नहपान, गुजरात के राजा कुमारपाल अहमदनगर क वीर सम्राज्ञी चांद सुल्ताना, छत्रपति शिवाजी, भरतपुर राज्य के संस्थापक राजा सूरजमल जाट सुप्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग के चित्र उल्लेखनीय हैं। संग्रहालय इन चित्रों के लिये उक्त महानुभावों तथा भारतकला भवन के कलाकार श्री दुबे जी का आभारी है।

हिमाचल विभाग—संग्रहालय के हिमाचल विभाग में श्री रामेश बेदी के सौजन्य में गत मास उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इस में सब से उल्लेखनीय वस्तु ताम्बे का बना हुआ अनाज नापने का एक बर्तन (पाथा) है, यह २५० वर्ष प्राचीन है, इस पर टिहरी गढ़वाल के तत्कालीन शासक प्रदीपशाह, उसके मन्त्री व तथा राजगुरु हरनाथ का और उत्कीर्ण करने वाले का नाम तथा राजकीय मुद्रा अंकित है। इस के अतिरिक्त हिमाचल के आर्थिक जीवन में अत्यधिक महत्वपूर्ण भाग लेने वाले एक वृक्ष भामल की लकड़ी के नमूने हैं, जिस के रेशों से मजबूत रस्सी बंटी जाती है और जिस की पतली शाखाओं को अन्धेरे में मशाल की भांति जलाया जाता है। इसके साथ ही पहाड़ में लाये जाने वाले कोदों मडुआ आदि अनेक ऐसे अनाज हैं जिन का प्रचलन मैदानी भाग से बिल्कुल उठता जा रहा है। आशा है श्री बेदी जी के सत्प्रयत्न और सहयोग से संग्रहालय का हिमाचल विभाग निरन्तर समृद्ध होता रहेगा।

अप्रैल मास में दर्शकों की संख्या ५४६४ थी। सब से अधिक दर्शक गुरुकुल उत्सव तथा वैशाखी के पर्व पर १४ एप्रिल को आये। इन की संख्या ११२८ थी।

★

## व्यायाम [ २८ पृष्ठ का शेष ]

पदार्थ खा सकते हो।

व्यायाम करते समय तंग वस्त्र शरीर पर न होने चाहिएं। जितना थोड़ा और ढीला वस्त्र हो उतना ही अच्छा है। व्यायाम कमरे से बाहर खुली हवा में करना चाहिए। इस से वायु स्नान भी हो जाता है। यदि धूप तेज न हो तो हल्की धूप में भी व्यायाम करो, इस से सूर्य स्नान हो जायगा।

जिस व्यायाम में मन लगता हो और वह आपकी सामर्थ्य के अनुसार हो, वही व्यायाम करो। ऐसा व्यायाम करना चाहिए कि जिस से सारा शरीर हिल जाय। जो भी व्यायाम हो अपना चित्त उस में लगाए रखो और यह धारणा करो कि आप अमुक अंग को बलवान बना रहे हैं। गहरा श्वास लेकर और उसे भीतर ही थोड़ा रोक कर धीरे-धीरे बाहर निकालो, इस से श्वास का व्यायाम भी हो जायगा—इसे प्राणायाम कहते हैं। अच्छी लम्बी सैर (वायु सेवन के लिए टहलने निकलना) भी व्यायाम है। व्यायाम सब कर चुको तो सीधे लेट जाओ और शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दो, किसी भी अंग में अकड़ाव न हो। इस से रक्त शरीर के कोने-कोने में पहुँच जायगा और शरीर को आराम मिलेगा और मन प्रसन्न होगा।

★

# स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

## वैदिक साहित्य

वैदिक ब्रह्मचर्य गीत श्री अभय २)
वैदिक विनय १, २, ३ भाग ,, २॥), २॥), २॥)
ब्राह्मण की गौ ,, ॥)
वैदिक अध्यात्मविद्या श्री भगवद्दत्त १)
वैदिक स्वप्न विज्ञान ,, २)
वेदगीताञ्जली [ वैदिक गीतिया ] श्री वेदव्रत २)
वैदिक सूक्तियां श्री रामनाथ १॥)
वरुण की नौका [ दो भाग ] श्री प्रियव्रत ६)
सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द श्री चमूपति २), १॥)
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या श्री प्रियरत्न १॥)

## धार्मिक साहित्य

सन्ध्या रहस्य श्री विश्वनाथ २)
धर्मोपदेश १, २, ३ भाग स्वा० श्रद्धानन्द, १), १), १॥)
आत्ममीमांसा श्री नन्दलाल २)
प्रार्थनावली ।) कविता मंजरी ।-)
आर्यसमाज और विचार संसार श्री चमूपति ।)
कविता कुसुमाञ्जली ।)

## स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

आहार [ भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए ] ५)
लहसुन : प्याज श्री रामेश बेदी २॥)
शहद [ शहद की पूरी जानकारी के लिए ] ,, ३)
तुलसी [ दूसरा परिवर्धित संस्करण ] ,, २)
सोंठ [ तीसरा परिवर्धित संस्करण ] ,, १॥)
देहाती इलाज [ दूसरा संस्करण ] ,, १)
मिर्चें [ काली, सफेद और लाल ] ,, १)
त्रिफला [ तीसरा संस्करण ] ,, ३।)
सांपों की दुनियां ,, ५)
स्तूप निर्माण कला सचित्र सजिल्द, ३)
प्रमेह, श्वास, अर्शरोग १।)
जल चिकित्सा श्री देवराज १॥)

## ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग श्री रामदेव ७)
बृहत्तर भारत [ सचित्र ] सजिल्द, अजिल्द ७), ६)
अपने देश की कथा सत्यकेतु १।=)
योगेश्वर कृष्ण श्री चमूपति ४)
ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार ॥)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव ५)
महावीर गेरीबाल्डी श्री इन्द्र १।)

## संस्कृत साहित्य

बालनीति कथामाला [ तीसरा संस्करण ] १)
नीतिशतक [ संशोधित ] =)
साहित्य-दर्पण [ संशोधित ] २)
संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [ चौथा संस्क० ] ॥=)
,, ,, २ भाग [ तीसरा संस्करण ] ।≈)
अष्टाध्यायी, पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध श्री गङ्गादत्त ७), ७)
रघुवंश संशोधित [ तीन सर्ग ] ।)
साहित्य-सुधासपद १, २, ३ बिन्दु १।), १।), १।)
संस्कृत साहित्य पाठावली ≠)

## शालोपयोगी

विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग श्री यज्ञदत्त १।)
गुणात्मक विश्लेषण [ बी. एस. सी. के लिए ] २॥)
भाषा प्रवेशिका [ वर्धा योजनानुसार ] ॥)
आर्यभाषा पाठावली [ आठवां संस्करण ] २॥)
ए गाइड टु दी स्टडी ऑफ संस्कृत ट्रांसलेशन एण्ड कंपोजीशन, दूसरा संस्क०, १२६ पृष्ठ १)

**पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।**

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालङ्कार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।